www.spiritualconce.com

ॐ

॥ ईशावास्योपनिषद ॥

SPIRITUALCONCE

प्रस्तावना

मानव सभ्यता के इतिहास में कुछ ऐसे ग्रंथ हैं जो केवल धार्मिक या आध्यात्मिक ग्रंथ नहीं होते, बल्कि वे मनुष्य के अस्तित्व, जीवन और ब्रह्मांड की गहरी समझ प्रदान करते हैं। उपनिषद ऐसे ही महान ग्रंथों में से हैं। इन्हीं उपनिषदों में से एक अत्यंत महत्वपूर्ण और संक्षिप्त उपनिषद है – ईशावास्य उपनिषद। यह छोटा होने के बावजूद इतना गहन है कि इसमें जीवन, संसार, कर्तव्य, त्याग, भोग, आत्मा और परम सत्य जैसे गहरे प्रश्नों के उत्तर समाहित हैं।

ईशावास्य उपनिषद की विशेषता यह है कि यह बहुत कम श्लोकों में जीवन के अत्यंत गहरे सिद्धांतों को प्रस्तुत करता है। परंतु वास्तविक समस्या यह है कि आज के समय में इन श्लोकों का वास्तविक अर्थ बहुत से लोगों तक ठीक प्रकार से पहुँच नहीं पाता। प्राचीन आचार्यों जैसे आदि शंकराचार्य और अन्य महान विद्वानों ने इन श्लोकों पर अत्यंत गहन भाष्य लिखे हैं, जो अपने आप में अमूल्य हैं। लेकिन उनकी भाषा, शैली और दार्शनिक गहराई इतनी जटिल है कि आज के सामान्य पाठक या विद्यार्थी के लिए उन्हें समझ पाना आसान नहीं होता।

यही वह कारण है जिसने इस पुस्तक को लिखने की प्रेरणा दी। मेरा उद्देश्य किसी महान आचार्य के भाष्य को चुनौती देना या उसे बदलना नहीं है। बल्कि प्रयास यह है कि उसी सनातन ज्ञान को आज के समय की सरल भाषा में, स्पष्ट उदाहरणों के साथ और आधुनिक समझ के अनुसार प्रस्तुत किया जाए ताकि विद्यार्थी और सामान्य पाठक दोनों उसे आसानी से समझ सकें।

इस पुस्तक में प्रत्येक श्लोक को मूल रूप में प्रस्तुत किया गया है। उसके बाद उसका वही हिन्दी अर्थ दिया गया है जो ग्रंथ में मिलता है, ताकि मूल भाव सुरक्षित रहे। इसके बाद प्रत्येक श्लोक की विस्तृत व्याख्या दी गई है। यह व्याख्या केवल पारंपरिक दार्शनिक दृष्टिकोण तक सीमित नहीं है, बल्कि इसे आधुनिक जीवन, मनोविज्ञान और विज्ञान के संदर्भ में भी समझाने का प्रयास किया गया है। कई स्थानों पर यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि उपनिषदों के विचार केवल आध्यात्मिक कल्पनाएँ नहीं हैं, बल्कि वे मानव मन, प्रकृति और ब्रह्मांड के नियमों से गहराई से जुड़े हुए हैं।

आज का विद्यार्थी विज्ञान पढ़ता है, तर्क से सोचता है और हर बात को समझना चाहता है। यदि उसे केवल शास्त्रीय भाषा में उत्तर दिया जाए तो अक्सर वह उससे जुड़ नहीं पाता। इसलिए इस पुस्तक में प्रत्येक विचार को ऐसे उदाहरणों के साथ समझाने का प्रयास किया गया है जो आधुनिक जीवन से जुड़े हों। यहाँ "विजुअल साइंस" और तर्कपूर्ण व्याख्या का उपयोग करके यह दिखाया गया है कि उपनिषदों के विचार केवल प्राचीन नहीं, बल्कि अत्यंत आधुनिक और सार्वकालिक हैं।

इस पुस्तक का उद्देश्य केवल श्लोकों का अर्थ बताना नहीं है। इसका वास्तविक उद्देश्य यह है कि पाठक इन श्लोकों के माध्यम से अपने जीवन को समझ सके। ईशावास्य उपनिषद हमें यह सिखाता है कि संसार को कैसे देखना चाहिए, कर्म को कैसे करना चाहिए, भोग और त्याग के बीच संतुलन कैसे बनाना चाहिए, और जीवन के गहरे सत्य को कैसे समझना चाहिए। यदि इन विचारों को सही प्रकार से समझ लिया जाए तो वे मनुष्य के दृष्टिकोण को पूरी तरह बदल सकते हैं।

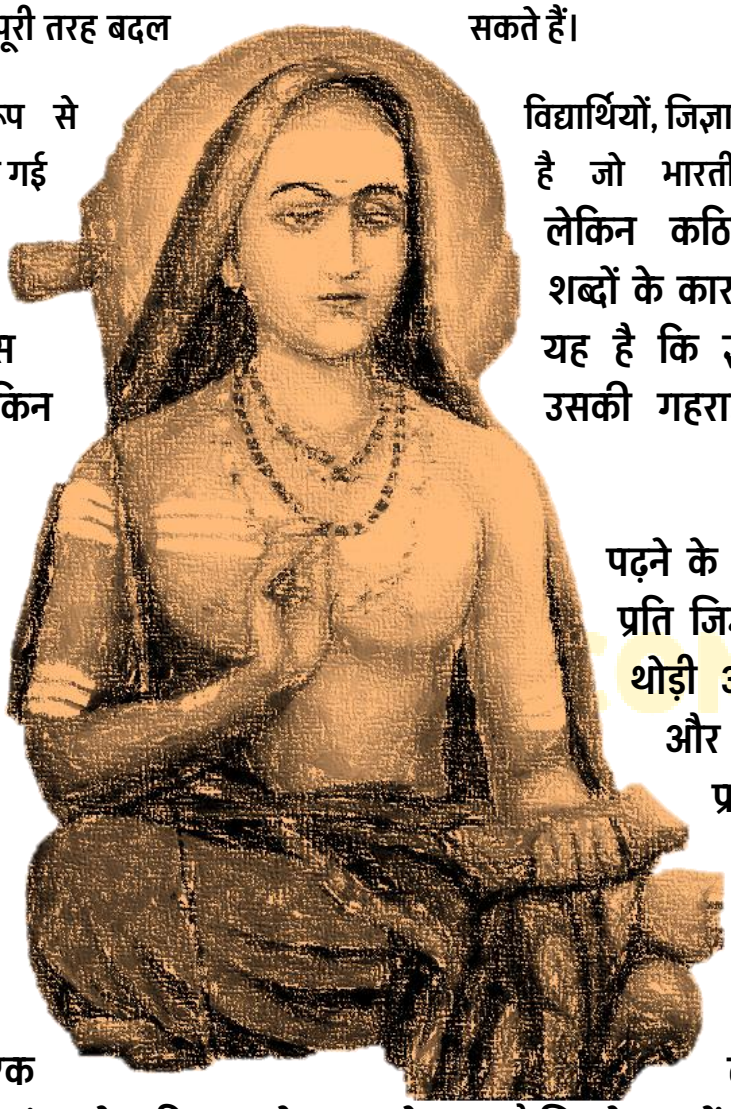

यह पुस्तक विशेष रूप से विद्यार्थियों, जिज्ञासु पाठकों और उन सभी लोगों के लिए लिखी गई है जो भारतीय दर्शन को समझना चाहते हैं लेकिन कठिन भाषा और जटिल दार्शनिक शब्दों के कारण उससे दूर हो जाते हैं। यहाँ प्रयास यह है कि ज्ञान को सरल बनाया जाए, लेकिन उसकी गहराई को कम न किया जाए।

यदि इस पुस्तक को पढ़ने के बाद पाठकों के मन में उपनिषदों के प्रति जिज्ञासा बढ़ती है, यदि वे जीवन को थोड़ी अधिक स्पष्टता से समझ पाते हैं, और यदि उन्हें यह अनुभव होता है कि प्राचीन ऋषियों का ज्ञान आज भी उतना ही प्रासंगिक है, तो इस प्रयास को सफल माना जाएगा।

यह कार्य केवल एक लेखक का नहीं है, बल्कि उस सनातन परंपरा के प्रति एक छोटा सा योगदान है जिसने हजारों वर्षों से मानवता को ज्ञान का प्रकाश दिया है। आशा है कि यह पुस्तक उस ज्ञान को सरल और स्पष्ट रूप में अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होगी।

1. विषय-सूची (Table of Contents)

1. **श्लोक 1** – क्या ईश्वर हर वस्तु में है? (Is God present in everything?)
2. **श्लोक 2** – कर्म करते हुए जीवन कैसे जिएँ? (How should we live while acting?)
3. **श्लोक 3** – आत्मज्ञान बिना जीवन कैसा होता? (What happens without self-knowledge?)
4. **श्लोक 4** – आत्मा मन से तेज कैसे? (How is Self faster than mind?)
5. **श्लोक 5** – आत्मा दूर भी और पास भी? (How is Self far and near?)
6. **श्लोक 6** – क्या सभी में एक ही आत्मा? (Is the same Self in everyone?)
7. **श्लोक 7** – एकत्व से शोक क्यों मिटता? (Why does oneness remove sorrow?)
8. **श्लोक 8** – आत्मा का असली स्वरूप क्या? (What is the true nature of Self?)
9. **श्लोक 9** – क्या केवल ज्ञान ही काफी? (Is knowledge alone really enough?)
10. **श्लोक 10** – ज्ञान और कर्म अलग फल क्यों? (Why different results of action and knowledge?)
11. **श्लोक 11** – ज्ञान और कर्म साथ क्यों? (Why balance wisdom and action?)
12. **श्लोक 12** – क्या केवल पदार्थ ही सत्य? (Is matter alone the reality?)
13. **श्लोक 13** – प्रकट और अप्रकट क्या हैं? (What are manifest and unmanifest?)
14. **श्लोक 14** – सृष्टि और विनाश का संबंध? (How are creation and destruction connected?)
15. **श्लोक 15** – सत्य पर स्वर्ण आवरण क्यों? (Why truth hidden by golden veil?)
16. **श्लोक 16** – क्या मैं वही ब्रह्म हूँ? (Am I the same cosmic Self?)
17. **श्लोक 17** – मृत्यु के समय क्या याद? (What should we remember at death?)
18. **श्लोक 18** – सही मार्ग कौन दिखाएगा? (Who guides us to the right path?)

SPIRITUALCONCE

ईशावास्य उपनिषद का संक्षिप्त परिचय

ईशावास्य उपनिषद वेदों के अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध उपनिषदों में से एक है। यह उपनिषद **शुक्ल यजुर्वेद** की **वाजसनेयी संहिता** के अंत में स्थित है। इसी कारण इसे कभी-कभी **वाजसनेयी संहिता उपनिषद** भी कहा जाता है। यह आकार में बहुत संक्षिप्त है, लेकिन इसका दार्शनिक महत्व अत्यंत गहरा माना जाता है। भारतीय दर्शन में इसे उन प्रमुख उपनिषदों में गिना जाता है जो जीवन, आत्मा, ईश्वर और सम्पूर्ण जगत के संबंध को समझाने का प्रयास करते हैं।

ईशावास्य उपनिषद में कुल **18 मंत्र (श्लोक)** हैं। इतने कम मंत्र होने के बावजूद इसमें अत्यंत गहन विचार प्रस्तुत किए गए हैं। इसमें मुख्य रूप से यह बताया गया है कि यह सम्पूर्ण जगत ईश्वर से व्याप्त है और मनुष्य को संसार में रहते हुए भी आसक्ति से मुक्त होकर कर्म करना चाहिए। यह उपनिषद त्याग और भोग के संतुलन, कर्म और ज्ञान के संबंध, तथा आत्मा और ब्रह्म के स्वरूप जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डालता है। इसकी विशेषता यह है कि यह मनुष्य को केवल आध्यात्मिक विचार ही नहीं देता, बल्कि यह भी बताता है कि संसार में रहते हुए संतुलित और जागरूक जीवन कैसे जिया जाए।

SPIRITUALCONCE

भारतीय दार्शनिक परंपरा में ईशावास्य उपनिषद पर अनेक महान आचार्यों ने भाष्य लिखे हैं। सबसे प्रसिद्ध भाष्य **आदि शंकराचार्य** का माना जाता है, जिन्होंने अद्वैत वेदान्त के दृष्टिकोण से इस उपनिषद की गहन व्याख्या की है। इसके अतिरिक्त **माध्वाचार्य**, **विद्यारण्य**, तथा वेदान्त की विभिन्न परंपराओं के कई विद्वानों ने भी इस पर अपने-अपने दृष्टिकोण से भाष्य किए हैं। आधुनिक काल में भी अनेक संतों और विचारकों जैसे **स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी चिन्मयानन्द, स्वामी शिवानन्द और श्री अरविन्द** आदि ने उपनिषदों के विचारों को सरल भाषा में समझाने का प्रयास किया।

उपनिषदों के विचारों ने केवल दार्शनिकों और संतों को ही नहीं, बल्कि कई आधुनिक वैज्ञानिकों और चिंतकों को भी प्रभावित किया है। उदाहरण के रूप में **एरविन श्रोडिंगर (Erwin Schrödinger)**, जो क्वांटम भौतिकी के महान वैज्ञानिकों में से एक थे, उपनिषदों के अद्वैत विचार से गहराई से प्रभावित थे। उन्होंने अपने लेखों में यह विचार व्यक्त किया कि चेतना का मूल स्वरूप एक ही है, जो उपनिषदों के "एकत्व" के सिद्धांत से मिलता-जुलता है। इसी प्रकार **वर्नर हाइजेनबर्ग (Werner Heisenberg)** ने भी भारतीय दर्शन और उपनिषदों के विचारों में रुचि

दिखाई थी और माना था कि पूर्वी दर्शन में ब्रह्मांड की प्रकृति को समझने के गहरे संकेत मिलते हैं। प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी **निकोला टेस्ला** भी भारतीय वेदान्त और संस्कृत शब्दों जैसे "आकाश" और "प्राण" की अवधारणाओं से प्रभावित बताए जाते हैं, जिनके माध्यम से उन्होंने ऊर्जा और ब्रह्मांड की प्रकृति को समझने का प्रयास किया।

ईशावास्य उपनिषद की विशेषता यह है कि यह अत्यंत संक्षिप्त होते हुए भी जीवन के गहरे प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करता है। इसमें यह बताया गया है कि मनुष्य को संसार से भागने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि सही समझ और दृष्टि के साथ संसार में रहते हुए भी उच्च जीवन जिया जा सकता है। यही कारण है कि यह उपनिषद हजारों वर्षों से भारतीय दर्शन और आध्यात्मिक परंपरा का एक महत्वपूर्ण आधार बना हुआ है और आज भी जिज्ञासु मनुष्यों को जीवन के गहरे सत्य को समझने की प्रेरणा देता है।

SPIRITUALCONCE

॥ ईशावास्योपनिषद ॥

शांति पाठ!

**ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्
पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय
पूर्णमेवावशिष्यते ॥**

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हिन्दी अर्थ: ॐ वह (परब्रह्म) पूर्ण है और यह (कार्यब्रह्म) भी पूर्ण है, क्योंकि पूर्ण से पूर्ण की ही उत्पत्ति होती है। तथा [प्रलयकाल में] पूर्ण [कार्यब्रह्म] का पूर्णत्व लेकर (अपने में लीन करके) पूर्ण [परब्रह्म] ही बच रहता है। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

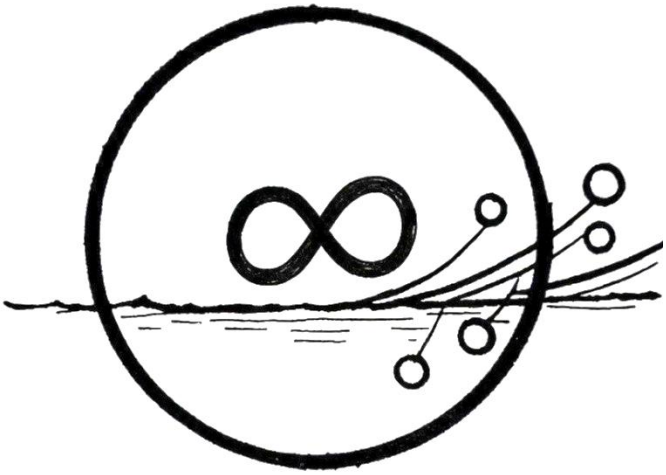

Grok

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते

अर्थात यदि पूर्ण में से पूर्ण निकाल भी लिया जाए तो भी पूर्ण ही बचता है।

सामान्य गणित में यह असंभव है। यदि 10 में से 10 निकाल लें तो 0 बचता है। लेकिन यहाँ ऋषि भौतिक गणित नहीं बल्कि अस्तित्व की वास्तविकता की बात कर रहे हैं। परम सत्य सीमित वस्तु नहीं है, वह अनंत सत्ता है इसलिए संसार उससे उत्पन्न होकर भी उसे कम नहीं करता। जैसे महासागर से अनगिनत तरंगें उठती हैं, लेकिन महासागर कम नहीं हो जाता।

Energy can neither be created nor destroyed. It only transforms.

ऊर्जा न तो बनाई जा सकती है न नष्ट की जा सकती है।
वह केवल रूप बदलती है।

मान लीजिए एक कंप्यूटर प्रोग्राम है। उस प्रोग्राम से आप हजारों फाइलें या कॉपी बना सकते हैं।लेकिन मूल प्रोग्राम खत्म नहीं होता। उसी तरह:

- एक दीपक से हजारों दीपक जलाए जा सकते हैं
- लेकिन पहला दीपक बुझता नहीं

इसी प्रकार:

- परम वास्तविकता = मूल स्रोत
- संसार = उसकी अभिव्यक्ति

दूसरा उदाहरण गणित का है।

अनंत (∞) यदि ∞ − ∞ या ∞ + ∞ हो तो परिणाम फिर भी अनंत ही रहता है। उपनिषद का "पूर्ण" इसी प्रकार की अनंतता को दर्शाता है। इसलिए ऋषि यह नहीं कह रहे कि संसार कोई भ्रम है या असली नहीं है।वे कह रहे हैं कि संसार उसी अनंत वास्तविकता की अभिव्यक्ति है।

श्लोक-1

ॐ ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तने भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥१॥

अर्थ

जगत् में जो कुछ स्थावर-जंगम संसार है वह सब ईश्वर के द्वारा आच्छादनीय है। [अर्थात उसे भगवत्स्वरूप अनुभव करना चाहिये] उसके त्याग-भाव से तू अपना पालन कर; किसीकी धनकी इच्छा न कर॥१॥

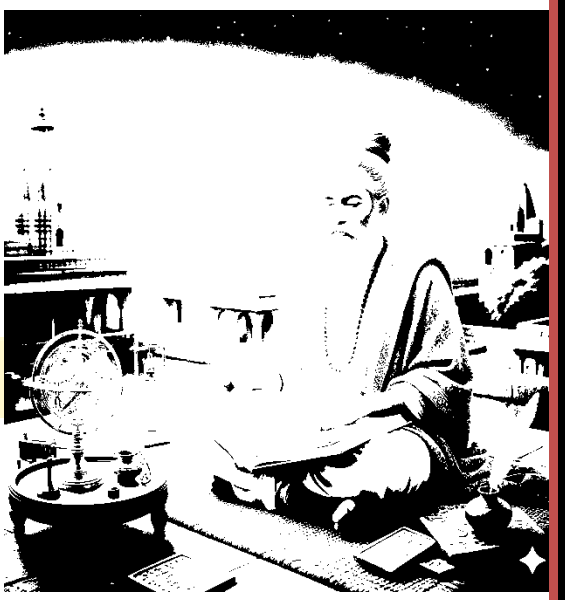

यह ईशावास्य उपनिषद् का पहला मंत्र है और पूरे उपनिषद् का मूल दर्शन इसी एक श्लोक में समाहित है। यहाँ कहा गया है कि इस पूरे जगत् में जो भी दिखाई देता है—चाहे स्थावर (स्थिर वस्तुएँ जैसे पर्वत, पृथ्वी, पेड़) हों या जंगम (चलने वाले जीव जैसे मनुष्य, पशु आदि)—सबमें ईश्वर का वास है। इसका अर्थ यह नहीं कि हर वस्तु अलग-अलग ईश्वर है, बल्कि यह कि सम्पूर्ण अस्तित्व एक ही चेतना या परम वास्तविकता से व्याप्त है। आधुनिक विज्ञान में भी जब हम पदार्थ का गहराई से अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि ब्रह्माण्ड की हर वस्तु मूलतः एक ही मूलभूत ऊर्जा और कणों से बनी है। उपनिषद् का यह विचार उसी एकता के सिद्धांत को दार्शनिक रूप में व्यक्त करता है।

"ईशा वास्यमिदं सर्वं" – अर्थात पूरा ब्रह्माण्ड एक ही चेतना या सत्ता से व्याप्त है।

आधुनिक **क्वांटम फिजिक्स** में भी यही विचार मिलता है कि ब्रह्माण्ड की हर वस्तु मूलतः **energy fields** से बनी है।

कुछ महत्वपूर्ण बातें:

- क्वांटम फील्ड थ्योरी के अनुसार पूरा ब्रह्माण्ड अलग-अलग वस्तुओं का समूह नहीं है, बल्कि **एक interconnected energy field** है।

- इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन जैसे कण भी स्थायी वस्तु नहीं हैं बल्कि **energy fluctuations** हैं।
- इसलिए वैज्ञानिक **David Bohm** ने "**Implicate Order**" की अवधारणा दी – कि पूरा ब्रह्माण्ड एक गहरी एकता में जुड़ा हुआ है।

यह विचार उपनिषद् के "सबमें एक ही तत्व" के सिद्धांत से बहुत मिलता-जुलता है।

श्लोक-2

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समा: ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥2॥

SPIRITUALCONCE

अर्थ

इस लोकमें कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीनेकी इच्छा करे। इस प्रकार मनुष्यत्वका अभिमान रखनेवाले तेरे लिये इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है, जिससे तुझे [अशुभ] कर्मका लेप न हो॥२॥

पहले मंत्र में बताया गया कि संसार में सब कुछ ईश्वर से व्याप्त है और मनुष्य को लोभ तथा आसक्ति से मुक्त होकर जीवन जीना चाहिए। अब यह दूसरा मंत्र स्पष्ट करता है कि इसका अर्थ संसार से भागना या कर्म छोड़ देना नहीं है। उपनिषद् कहता है कि मनुष्य को कर्म करते हुए ही जीवन जीना चाहिए और पूरे सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि जीवन का उद्देश्य कर्म से भागना नहीं बल्कि सही दृष्टि से कर्म करना है।

यहाँ एक महत्वपूर्ण बात समझनी चाहिए कि उपनिषद् कर्म को समस्या नहीं मानता, बल्कि **कर्म के साथ जुड़ी आसक्ति और अहंकार** को समस्या मानता है। जब मनुष्य "मैं ही सब कुछ कर रहा हूँ" या "यह सब मेरा है" जैसी भावना में काम करता है, तब वही कर्म उसे बाँधने लगता है। लेकिन

यदि वही कर्म कर्तव्य-बोध, सेवा-भाव और व्यापक दृष्टि से किया जाए, तो वही कर्म बंधन नहीं बनता। इसी को शास्त्रों में "कर्मयोग" कहा गया है।

आधुनिक मनोविज्ञान भी एक समान सिद्धांत बताता है। जब कोई व्यक्ति केवल परिणाम (result) के बारे में सोचते हुए काम करता है, तो उसके भीतर तनाव, चिंता और असफलता का डर पैदा होता है। लेकिन जब वही व्यक्ति कार्य की प्रक्रिया पर ध्यान देता है और उसे अपना कर्तव्य मानकर करता है, तो उसका मन अधिक शांत और स्थिर रहता है। आधुनिक psychology में इसे **"process-oriented mindset"** कहा जाता है।

SPIRITUALCONCE

श्लोक-3

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽवृताः ।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ ३ ॥

अर्थ

वे असुरसम्बन्धी लोक आत्मा के अज्ञानरूप अन्धकार से आच्छादित हैं। जो कोई भी आत्मा का हनन करनेवाले लोग हैं वे मरने के अनन्तर उन्हें प्राप्त होते हैं।।३।।

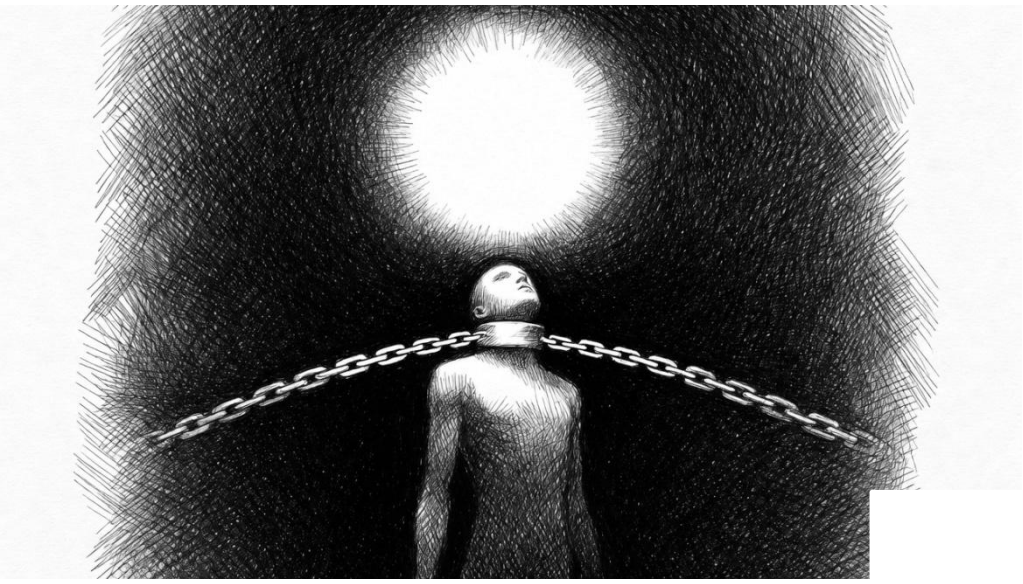

यह मन्त्र ईशावास्य उपनिषद् के सबसे गहरे मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक मन्त्रों में से एक है। यहाँ "असुर्या लोक" किसी भौगोलिक स्थान का वर्णन नहीं है, बल्कि चेतना की एक अवस्था का संकेत है। उपनिषद् कहता है कि ऐसे लोक "अन्धेन तमसा आवृत" होते हैं – अर्थात् वे गहरे अज्ञान के अंधकार से ढके होते हैं। जब मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप, अर्थात् आत्मा, को नहीं पहचानता तो उसका जीवन बाहरी चीज़ों, इच्छाओं, भय और भ्रम के अंधकार में उलझ जाता है।

यहाँ "आत्महनो जनाः" शब्द बहुत महत्वपूर्ण है। इसका शाब्दिक अर्थ आत्महत्या करने वाले लोग नहीं है। उपनिषद् का अर्थ है – वे लोग जो अपने भीतर के आत्मस्वरूप को पहचानने की क्षमता को नष्ट कर देते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा में कहें तो यह वह अवस्था है जब व्यक्ति अपनी चेतना, विवेक और आत्मबोध को पूरी तरह दबा देता है और केवल बाहरी सुख, भौतिक वस्तुओं और सामाजिक पहचान के पीछे भागता रहता है।

इस मन्त्र का गहरा संदेश यह है कि मनुष्य का सबसे बड़ा नुकसान बाहरी चीज़ों से नहीं होता, बल्कि तब होता है जब वह अपने भीतर के सत्य को भूल जाता है। जब आत्मबोध समाप्त हो जाता है, तब जीवन केवल यांत्रिक क्रियाओं की श्रृंखला बन जाता है। यही अवस्था "असुर्या लोक" है – अज्ञान, भ्रम और चेतना के अभाव की अवस्था।

श्लोक-4

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत् तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥

अर्थ

वह आत्मतत्त्व अपने स्वरूप से विचलित न होनेवाला, एक तथा मनसे भी तीव्र गतिवाला है। इसे इन्द्रियाँ प्राप्त नहीं कर सकतीं, क्योंकि यह उन सबसे पहले (आगे) गया हुआ (विद्यमान) है। वह स्थिर होनेपर भी अन्य सब गतियोंको अतिक्रमण कर जाता है। उसके रहते हुए [अर्थात उसी सत्तामें ही] वायु समस्त प्राणियोंके पृथग्-रूप क्रियाका विभाग करता है ॥ ४ ॥

उपनिषद् कहता है कि आत्मा स्थिर भी है और मन से भी अधिक तेज़ भी। पहली नज़र में यह विरोधाभास लगता है, लेकिन वास्तव में यह चेतना और मन के बीच के संबंध को समझाने का तरीका है।

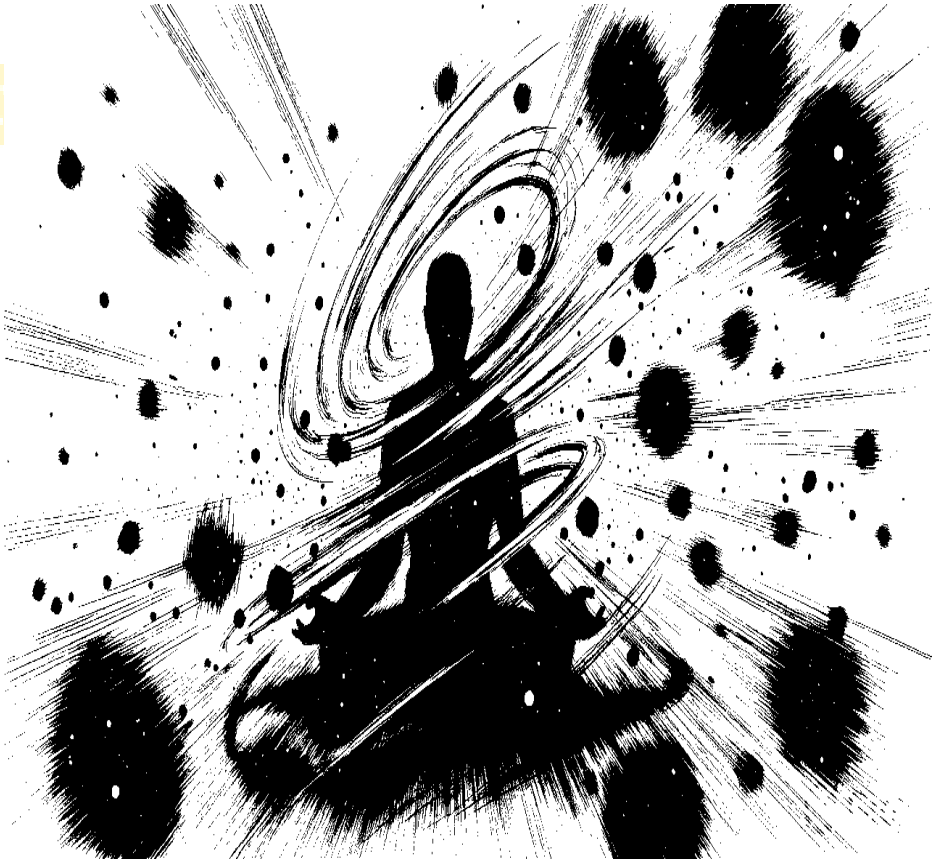

मन लगातार चलता रहता है। हर क्षण विचार बदलते हैं – कभी भविष्य के बारे में सोचते हैं, कभी अतीत के बारे में, कभी कल्पना करते हैं। लेकिन इन सभी विचारों को देखने वाला एक “साक्षी” भी होता है। वही साक्षी आत्मा है। वह स्वयं कहीं नहीं जाता, लेकिन उसके सामने मन की सारी गति घटित होती रहती है।

उदाहरण 1 – सिनेमा स्क्रीन

एक बहुत सरल उदाहरण सिनेमा स्क्रीन का है। जब आप फिल्म देखते हैं तो स्क्रीन पर बहुत तेज़ गति से दृश्य बदलते रहते हैं – कार दौड़ती है, लोग भागते हैं, विस्फोट होते हैं। लेकिन जिस स्क्रीन पर यह सब दिखाई देता है, वह स्वयं स्थिर रहती है।
अगर स्क्रीन न हो तो कोई दृश्य दिखाई ही नहीं देगा।

ठीक उसी तरह आत्मा उस "स्क्रीन" की तरह है और मन के विचार उस "फिल्म" की तरह हैं। विचार तेजी से बदलते रहते हैं, लेकिन चेतना स्वयं स्थिर रहती है।

उदाहरण 2 – विज्ञान का स्पेस (Space)

आधुनिक भौतिकी में स्पेस का उदाहरण भी इसी विचार को समझाता है। ब्रह्मांड में ग्रह, तारे, आकाशगंगाएँ सब अत्यधिक गति से घूम रहे हैं। प्रकाश 3 लाख किलोमीटर प्रति सेकंड की गति से चलता है। लेकिन जिस स्पेस में यह सब हो रहा है, वह स्वयं कहीं नहीं भाग रहा। वह स्थिर आधार है।

उपनिषद् कहता है कि आत्मा भी उसी प्रकार का आधार है – सारी गतिविधियाँ उसी में होती हैं।

श्लोक-5

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५ ॥

अर्थ

वह आत्मतत्त्व चलता है और नहीं भी चलता। वह दूर है और समीप भी है। वह सबके अन्तर्गत है और वही इस सबके बाहर भी है ॥ ५ ॥

पहली बार पढ़ने पर यह वाक्य उल्टा-सीधा लग सकता है — "चलता भी है और नहीं भी चलता", "दूर भी है और पास भी है", "अंदर भी है और बाहर भी है"। लेकिन उपनिषद् यहाँ किसी भौतिक वस्तु का वर्णन नहीं कर रहा, बल्कि चेतना या ब्रह्म की प्रकृति को समझाने की कोशिश कर रहा है।

SPIRITUALCONCE

उदाहरण — बिजली और उपकरण

मान लीजिए आपके घर में बिजली है। पंखा घूमता है, बल्ब जलता है, मोबाइल चार्ज होता है, कंप्यूटर चलता है। इन सब चीज़ों में अलग-अलग तरह की गतिविधि दिखाई देती है। लेकिन इन सबके पीछे जो मूल शक्ति है — बिजली — वह स्वयं घूम नहीं रही। वह एक ऊर्जा है जो हर उपकरण में अलग-अलग रूप में काम कर रही है।

उपनिषद् कहता है कि आत्मा भी उसी प्रकार है। वह स्वयं स्थिर है, लेकिन उसी के कारण मन, शरीर और प्रकृति की सारी गतिविधियाँ चलती हैं।

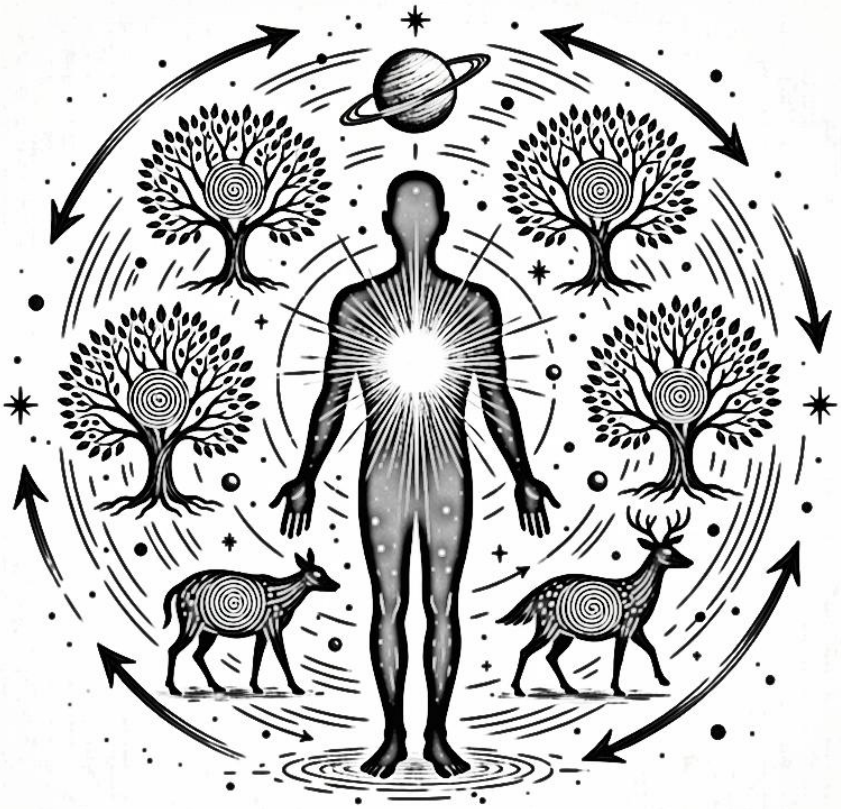

अंदर भी और बाहर भी

मन्त्र का अंतिम भाग कहता है – "तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः"। इसका अर्थ है कि वही चेतना हर चीज़ के भीतर भी है और उसी के बाहर भी।

भौतिकी में यदि हम ब्रह्मांड को देखें तो हर वस्तु अंततः ऊर्जा और क्वांटम फील्ड से बनी है। हर परमाणु के भीतर वही मूलभूत ऊर्जा है और पूरे ब्रह्मांड में भी वही ऊर्जा फैली हुई है। उपनिषद् हजारों वर्ष पहले इसी विचार को दार्शनिक भाषा में कह रहा था – कि वास्तविकता का मूल तत्व हर जगह उपस्थित है।

श्लोक-6

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ ६ ॥

अर्थ

जो [साधक] सम्पूर्ण भूतोंको आत्ममें ही देखता है और समस्त भूतोंमें भी आत्माको ही देखता है वह इस [सार्वात्म्यदर्शन] के कारण ही किसीसे घृणा नहीं करता ॥ ६ ॥

सामान्य अवस्था में मनुष्य दुनिया को "मैं" और "दूसरे" के रूप में देखता है। यही विभाजन संघर्ष, ईर्ष्या और घृणा का मूल कारण बनता है। लेकिन जब किसी व्यक्ति को यह अनुभव होने लगता है कि सभी जीवों के भीतर वही मूल चेतना है, तब उसका दृष्टिकोण बदल जाता है। वह दूसरों को अलग इकाई के रूप में नहीं बल्कि उसी अस्तित्व का भाग समझने लगता है।

आधुनिक जीवविज्ञान बताती है कि पृथ्वी के सभी जीवों का मूल आधार एक ही है – DNA। मनुष्य, पशु, पेड़-पौधे, सूक्ष्म जीव – सभी का जीवन एक ही जैविक संरचना के सिध्दान्तों पर आधारित है। इसका अर्थ है कि जीवन की जड़ एक ही है, केवल उसके रूप अलग-अलग हैं।

इसी तरह भौतिकी बताती है कि ब्रह्मांड की सारी वस्तुएँ अंततः ऊर्जा और मूलभूत कणों से बनी हैं। चाहे वह मनुष्य हो, पेड़ हो, या तारा – सब उसी ब्रह्मांडीय पदार्थ और ऊर्जा के रूप हैं।

उपनिषद् इसी सत्य को व्यक्त करता है। वह प्रकार भौतिक प्रकृति से बने स्तर पर भी के प्रकट रूप हैं।

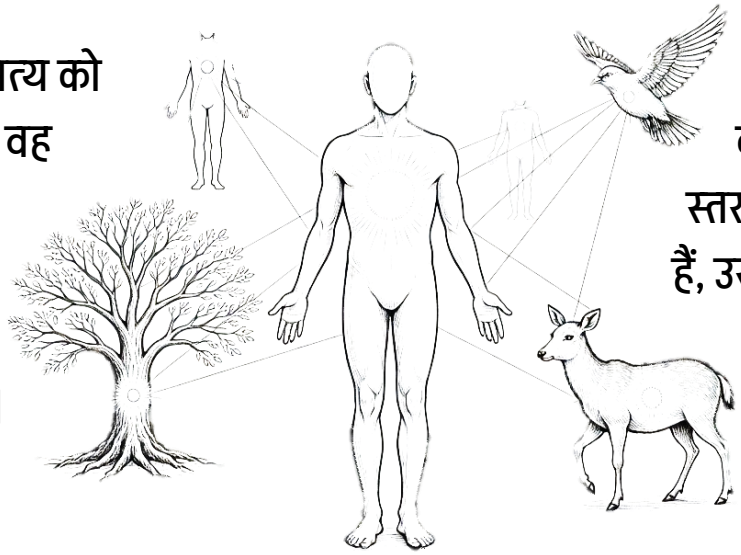

चेतना के स्तर पर कहता है कि जिस स्तर पर सब एक ही हैं, उसी प्रकार चेतना के सब एक ही आत्मा

उदाहरण

मान लीजिए समुद्र में हजारों लहरें उठ रही हैं। हर लहर का आकार अलग है – कोई बड़ी है, कोई छोटी, कोई तेज़ है, कोई धीमी। अगर लहरें स्वयं को अलग समझें तो वे एक-दूसरे से टकराएँगी और प्रतिस्पर्धा करेंगी। लेकिन वास्तव में वे सब समुद्र ही हैं।

उपनिषद् कहता है कि मनुष्य भी उसी प्रकार हैं – अलग-अलग शरीर और व्यक्तित्व दिखाई देते हैं, लेकिन मूल चेतना एक ही है।

जब यह समझ विकसित होती है, तब व्यक्ति का व्यवहार बदलने लगता है। वह दूसरों को नुकसान पहुँचाने से बचता है, क्योंकि वह जानता है कि किसी और को चोट पहुँचाना अंततः उसी चेतना को चोट पहुँचाना है जिसमें वह स्वयं भी स्थित है।

श्लोक-7

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥

अर्थ

जिस समय ज्ञानी पुरुषके लिये सब भूत आत्मा ही हो गये उस समय एकत्व देखनेवाले उस विद्वानको क्या शोक और क्या मोह हो सकता है ? ॥ ७ ॥

व्याख्या

यह मन्त्र पिछले मन्त्र (६) का ही अगला और अधिक गहरा चरण है। पहले मन्त्र में कहा गया था कि जो व्यक्ति सभी प्राणियों में आत्मा को देखता है, वह किसी से घृणा नहीं करता। यहाँ उपनिषद् उस विचार को और आगे ले जाता है और कहता है कि जब किसी ज्ञानी को वास्तव में यह अनुभव हो जाता है कि सभी प्राणी उसी एक आत्मा के रूप हैं, तब उसके जीवन से दो सबसे बड़ी मानसिक समस्याएँ समाप्त हो जाती हैं – **मोह (भ्रम या आसक्ति)** और **शोक (दुःख)**।

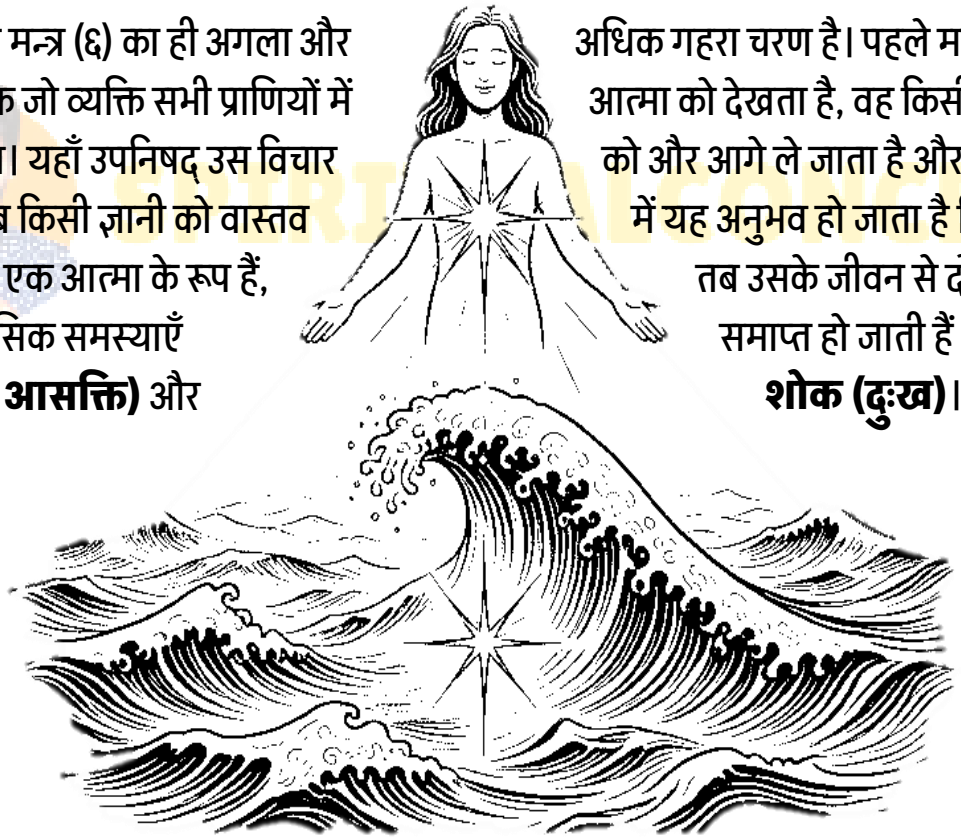

उदाहरण – शरीर और कोशिकाएँ

आधुनिक जीवविज्ञान में हमारे शरीर का उदाहरण लें। हमारे शरीर में लगभग **37 ट्रिलियन कोशिकाएँ** होती हैं। हर कोशिका अलग-अलग काम करती है – कुछ मस्तिष्क की कोशिकाएँ हैं, कुछ रक्त की, कुछ मांसपेशियों की। यदि कोई एक कोशिका स्वयं को पूरी तरह अलग समझे और केवल अपने लिए काम करे, तो पूरा शरीर बीमार हो जाएगा।

लेकिन वास्तव में सभी कोशिकाएँ एक ही जीव का हिस्सा हैं और उसी एक जीवन के लिए काम कर रही हैं।

उपनिषद् कहता है कि मानव समाज और पूरा जीवन भी इसी तरह है। सभी जीव उस एक अस्तित्व की "कोशिकाओं" की तरह हैं। जब कोई व्यक्ति इस एकता को समझता है, तो उसके मन में दूसरों के प्रति ईर्ष्या, घृणा या अत्यधिक आसक्ति कम होने लगती है।

SPIRITUALCONCE

श्लोक-8

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

अर्थ

वह आत्मा सर्वगत, शुद्ध, अशरीरी, अक्षत, स्नायुरहित, निर्मल, अपापविद्ध, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वोच्च और स्वयम्भू (स्वयं ही होनेवाला) है। उसीने नित्यसिद्ध संवत्सर नाम प्रजापतियोंके लिये यथायोग्य तिरी अर्थों (वस्तुओं अथवा पदार्थों) का विभाग किया है ॥ ८ ॥

सबसे पहले मन्त्र कहता है – **"शुक्रम्"** अर्थात् वह प्रकाशमय और शुद्ध है। इसका अर्थ यह नहीं कि आत्मा सचमुच कोई भौतिक प्रकाश है, बल्कि यह संकेत है कि चेतना ज्ञान का स्रोत है। जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से वस्तुएँ दिखाई देती हैं, उसी प्रकार चेतना के कारण ही अनुभव संभव होता है। यदि चेतना न हो तो हम कुछ भी देख, सोच या अनुभव नहीं कर सकते।

इसके बाद कहा गया है – **"अकायम्"** अर्थात उसका कोई शरीर नहीं है। शरीर सीमित होता है – उसका आकार होता है, वह जन्म लेता है और नष्ट भी हो जाता है। लेकिन चेतना किसी एक शरीर में सीमित नहीं होती। शरीर बदल सकते हैं, लेकिन अनुभव करने की मूल चेतना बनी रहती है।

आधुनिक भौतिकी में "फील्ड" (field) की अवधारणा कुछ हद तक इस विचार को समझाने में मदद करती है। उदाहरण के लिए **ग्रैविटेशनल फील्ड** या **इलेक्ट्रोमैग्नेटिक फील्ड** पूरे अंतरिक्ष में फैली होती हैं। उनका कोई ठोस शरीर नहीं होता, लेकिन उनका प्रभाव हर जगह देखा जा सकता है।

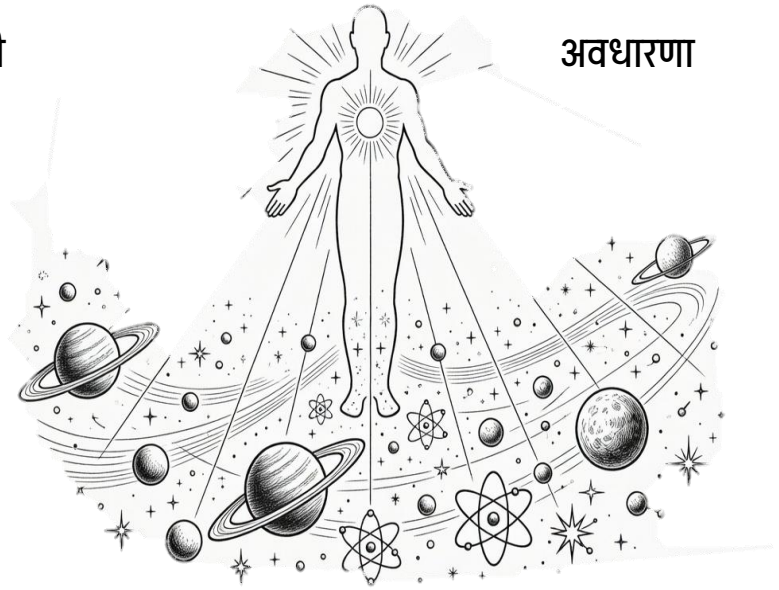

उपनिषद् का विचार इससे भी अधिक गहरा है – वह कहता है कि चेतना स्वयं उस आधार की तरह है जिसमें प्रकृति की सारी गतिविधियाँ घटित होती हैं।

मन्त्र में एक और महत्वपूर्ण शब्द है – **"कविर्मनीषी"**। इसका अर्थ है वह सर्वज्ञ और बुद्धिमान है। यहाँ इसका अर्थ यह नहीं कि कोई व्यक्ति बैठकर सोच रहा है, बल्कि यह संकेत है कि ब्रह्मांड में एक गहरी व्यवस्था और बुद्धिमत्ता मौजूद है।

उदाहरण – प्रकृति की व्यवस्था

यदि हम प्रकृति को देखें तो हमें अद्भुत व्यवस्था दिखाई देती है। ग्रह अपने निश्चित कक्षाओं में घूमते हैं, DNA में जीवन की जटिल जानकारी व्यवस्थित रूप में मौजूद होती है, और भौतिकी के नियम पूरे ब्रह्मांड में एक समान काम करते हैं।

यह सब संकेत करता है कि ब्रह्मांड पूरी तरह अव्यवस्थित नहीं है, बल्कि उसके पीछे गहरे नियम और संरचनाएँ काम कर रही हैं।

उपनिषद् इसी व्यवस्था को दार्शनिक भाषा में व्यक्त करता है। वह कहता है कि वही मूल चेतना या ब्रह्म इस पूरे ब्रह्मांड के नियमों और व्यवस्था का आधार है।

SPIRITUALCONCE

श्लोक-१

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥ ९ ॥

अर्थ

जो अविद्या (कर्म) की उपासना करते हैं वे [अविद्यावश] घोर अन्धकारमें प्रवेश करते हैं और जो विद्या (उपासना) में ही रत हैं वे मानो उससे भी अधिक अन्धकारमें प्रवेश करते हैं ॥ ९ ॥

व्याख्या

यह मन्त्र पहली नज़र में बहुत अजीब लगता है, क्योंकि सामान्यतः हम मानते हैं कि **विद्या (ज्ञान)** अच्छी चीज़ है और **अविद्या (अज्ञान)** बुरी। लेकिन यहाँ उपनिषद् कह रहा है कि केवल अविद्या में रहने वाले अंधकार में जाते हैं, और जो केवल विद्या में ही रत रहते हैं वे उससे भी गहरे अंधकार में जा सकते हैं। यह विरोधाभास समझना ही इस मन्त्र की असली कुंजी है।

उपनिषद् का कहना है कि दोनों ही चरम अवस्थाएँ अधूरी हैं।

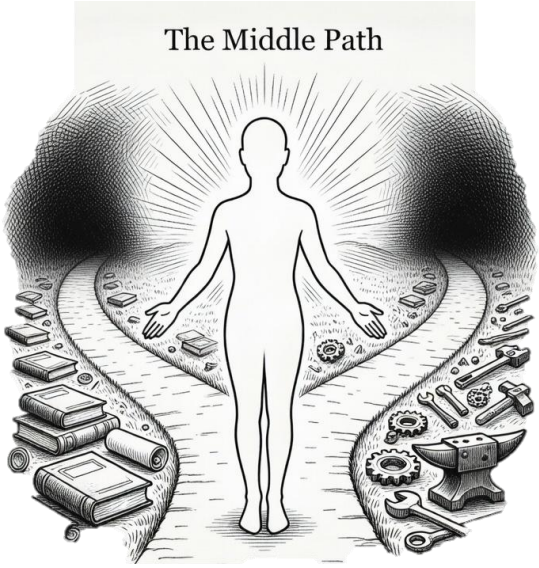

उदाहरण – विज्ञान और प्रयोग

मान लीजिए कोई व्यक्ति केवल किताबों में भौतिकी पढ़ता रहता है लेकिन कभी प्रयोगशाला में प्रयोग नहीं करता। उसका ज्ञान अधूरा रहेगा। दूसरी ओर अगर कोई व्यक्ति बिना सिद्धान्त समझे केवल प्रयोग करता रहे, तो वह भी गहराई से विज्ञान को नहीं समझ पाएगा।

वास्तविक वैज्ञानिक वही बनता है जो **सिद्धान्त (knowledge)** और **प्रयोग (action)** दोनों को संतुलित करता है।

ठीक यही बात उपनिषद् यहाँ कह रहा है – जीवन में केवल कर्म ही पर्याप्त नहीं है और केवल ज्ञान भी पर्याप्त नहीं है।

आधुनिक जीवन का उदाहरण

आज की दुनिया में यह मन्त्र और भी अधिक प्रासंगिक है। बहुत से लोग केवल करियर, पैसा और भौतिक सफलता के पीछे भागते हैं। वे जीवन के गहरे प्रश्नों – जैसे चेतना, अर्थ, या आत्मज्ञान – के बारे में कभी सोचते ही नहीं। यह अविद्या का अंधकार है।

दूसरी ओर कुछ लोग केवल आध्यात्मिक विचारों, दर्शन या सिद्धान्तों में ही उलझ जाते हैं और वास्तविक जीवन की जिम्मेदारियों से भागने लगते हैं। यह भी एक तरह का अंधकार है।

उपनिषद् का संकेत यह है कि **संतुलन** आवश्यक है। मनुष्य को कर्म भी करना चाहिए और ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए। केवल एक पक्ष को पकड़ लेने से जीवन अधूरा रह जाता है।

SPIRITUALGONGE

श्लोक-10

अन्यदेवाहुर्विद्यया अन्यदाहुरविद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥

अर्थ

विद्या (देवताज्ञान) से और ही फल बताया गया है तथा अविद्या (कर्म) से और ही फल बताया गया है। ऐसा हमने बुद्धिमान् पुरुषोंसे सुना है, जिन्होंने हमारे प्रति उसकी व्याख्या की थी ॥ १० ॥

व्याख्या

यह मन्त्र पिछले मन्त्र (९) के विचार को आगे स्पष्ट करता है। वहाँ कहा गया था कि केवल अविद्या या केवल विद्या दोनों ही मनुष्य को अंधकार की ओर ले जा सकते हैं। यहाँ उपनिषद् यह बताता है कि विद्या और अविद्या दोनों का अपना-अपना अलग उद्देश्य और परिणाम है।

उदाहरण

मान लीजिए एक वैज्ञानिक है जो अंतरिक्ष तकनीक पर काम कर रहा है। वह रॉकेट बनाना, ऊर्जा का उपयोग करना और ग्रहों का अध्ययन करना जानता है। यह ज्ञान उसे ब्रह्मांड के भौतिक पहलुओं को समझने में मदद करता है। लेकिन यह ज्ञान जरूरी नहीं कि उसे यह समझा दे कि चेतना क्या है, जीवन का उद्देश्य क्या है, या अस्तित्व का अंतिम अर्थ क्या है।

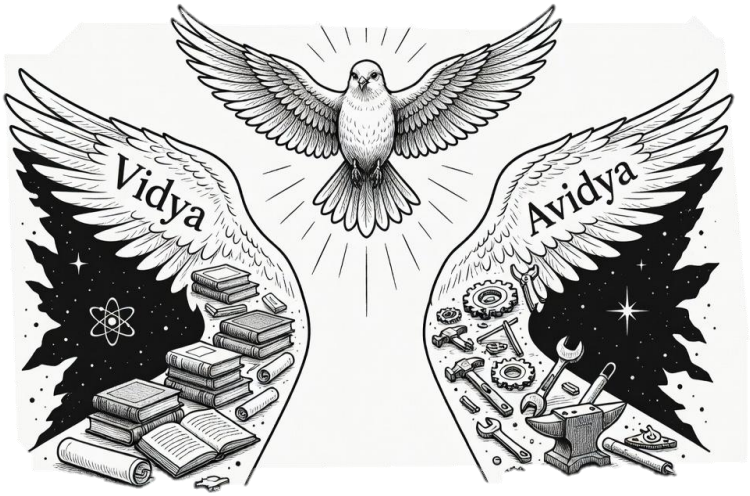

इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति केवल आध्यात्मिक विचारों में ही लगा रहे लेकिन भौतिक संसार के नियमों और व्यवहारिक जीवन को न समझे, तो वह भी अधूरा रह जाएगा।

सरल उदाहरण

इसे ऐसे समझिए जैसे एक पक्षी के दो पंख होते हैं। अगर पक्षी के पास केवल एक ही पंख हो तो वह उड़ नहीं सकता। उड़ने के लिए दोनों पंखों का संतुलन आवश्यक है।

उपनिषद् का संदेश भी यही है – मनुष्य के जीवन में **व्यवहारिक ज्ञान (अविद्या)** और **आध्यात्मिक ज्ञान (विद्या)** दोनों की आवश्यकता है।

व्यवहारिक ज्ञान हमें संसार में सही ढंग से जीना सिखाता है, जबकि आध्यात्मिक ज्ञान हमें यह समझने में मदद करता है कि हम वास्तव में कौन हैं।

जब दोनों का संतुलन होता है, तभी मनुष्य का विकास पूर्ण रूप से संभव होता है। यही कारण है कि उपनिषद् के ऋषि इन दोनों को विरोधी नहीं मानते, बल्कि जीवन के दो आवश्यक आयाम के रूप में देखते हैं।

SPIRITUALCONCE

श्लोक-11

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ ११ ॥

अर्थ

जो विद्या और अविद्या—इन दोनोंको ही एक साथ जानता है वह अविद्याके द्वारा मृत्युको पार करके विद्याके द्वारा अमृतत्व प्राप्त कर लेता है ॥ ११ ॥

यहाँ **अविद्या** का अर्थ है संसार से जुड़ा ज्ञान और कर्म – जैसे विज्ञान, तकनीक, समाज, शरीर, प्रकृति और जीवन की व्यवहारिक व्यवस्था को समझना। यह ज्ञान हमें जीवन को व्यवस्थित करने, समस्याओं को हल करने और प्रकृति के नियमों को समझने में मदद करता है। उपनिषद् कहता है कि इस प्रकार का ज्ञान मनुष्य को "मृत्यु को पार करने" में सहायता करता है। इसका अर्थ यह है कि भौतिक ज्ञान हमें जीवन की सीमाओं, रोगों और प्राकृतिक चुनौतियों से लड़ने की क्षमता देता है।

लेकिन केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है। इसके बाद मन्त्र कहता है कि **विद्या के द्वारा अमृतत्व प्राप्त होता है**। यहाँ विद्या का अर्थ है आत्मज्ञान – अर्थात यह समझ कि हमारा वास्तविक स्वरूप केवल शरीर तक सीमित नहीं है। जब मनुष्य इस चेतना को समझता है, तब उसके जीवन की दृष्टि बदल जाती है।

उदाहरण

मान लीजिए चिकित्सा विज्ञान को लें। चिकित्सा विज्ञान (medicine) हमें शरीर की बीमारियों से बचाने में मदद करता है। यह अविद्या के क्षेत्र में आता है क्योंकि यह भौतिक शरीर और प्रकृति के नियमों से संबंधित है। इसके माध्यम से मनुष्य अपने जीवन को लंबा और स्वस्थ बना सकता है।

लेकिन चिकित्सा विज्ञान यह नहीं बता सकता कि चेतना क्या है, जीवन का अंतिम अर्थ क्या है, या अस्तित्व का मूल स्वरूप क्या है। इन प्रश्नों का उत्तर दर्शन और आत्मज्ञान के क्षेत्र में खोजा जाता है।

इसलिए उपनिषद् कहता है कि मनुष्य को दोनों की आवश्यकता है – **विज्ञान और आत्मज्ञान**।

एक सरल उदाहरण

मान लीजिए आपके पास एक कार है। कार को चलाने के लिए आपको दो चीज़ों की आवश्यकता होती है –
पहली, इंजन और तकनीक जो कार को आगे बढ़ाती है।
दूसरी, दिशा या मार्गदर्शन जो बताता है कि आपको कहाँ जाना है।

यदि कार में इंजन हो लेकिन दिशा न हो, तो आप कहीं भी भटक सकते हैं। और यदि दिशा हो लेकिन इंजन न हो, तो आप आगे बढ़ ही नहीं पाएँगे।

उपनिषद् का संदेश भी यही है –
अविद्या हमें साधन देती है, और विद्या हमें दिशा देती है।

जब मनुष्य दोनों को संतुलित रूप से समझता है, तब उसका जीवन केवल भौतिक सफलता तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह गहरी समझ और संतुलन के साथ जीवन जीने लगता है। यही स्थिति उपनिषद् की भाषा में **अमृतत्व** की ओर बढ़ना कहलाती है।

SPIRITUALCONCE

श्लोक-12

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः ॥ १२ ॥

अर्थ

जो असम्भूति (अव्यक्त प्रकृति) की उपासना करते हैं वे घोर अन्धकारमें प्रवेश करते हैं और जो सम्भूति (कार्यब्रह्म) में रत हैं वे मानो उससे भी अधिक अन्धकारमें प्रवेश करते हैं ॥ १२ ॥

यह मन्त्र भी ईशावास्य उपनिषद् के उन गहरे मन्त्रों में से है जहाँ ऋषि मनुष्य की समझ की दो सीमाओं की ओर संकेत करते हैं। यहाँ **"असम्भूति"** और **"सम्भूति"** दो शब्दों का प्रयोग हुआ है। असम्भूति का अर्थ है अव्यक्त प्रकृति – वह मूल प्रकृति जो अभी प्रकट नहीं हुई है। सम्भूति का अर्थ है प्रकट सृष्टि – अर्थात वह संसार जिसे हम देखते हैं, जैसे पदार्थ, जीव, ग्रह, ऊर्जा आदि।

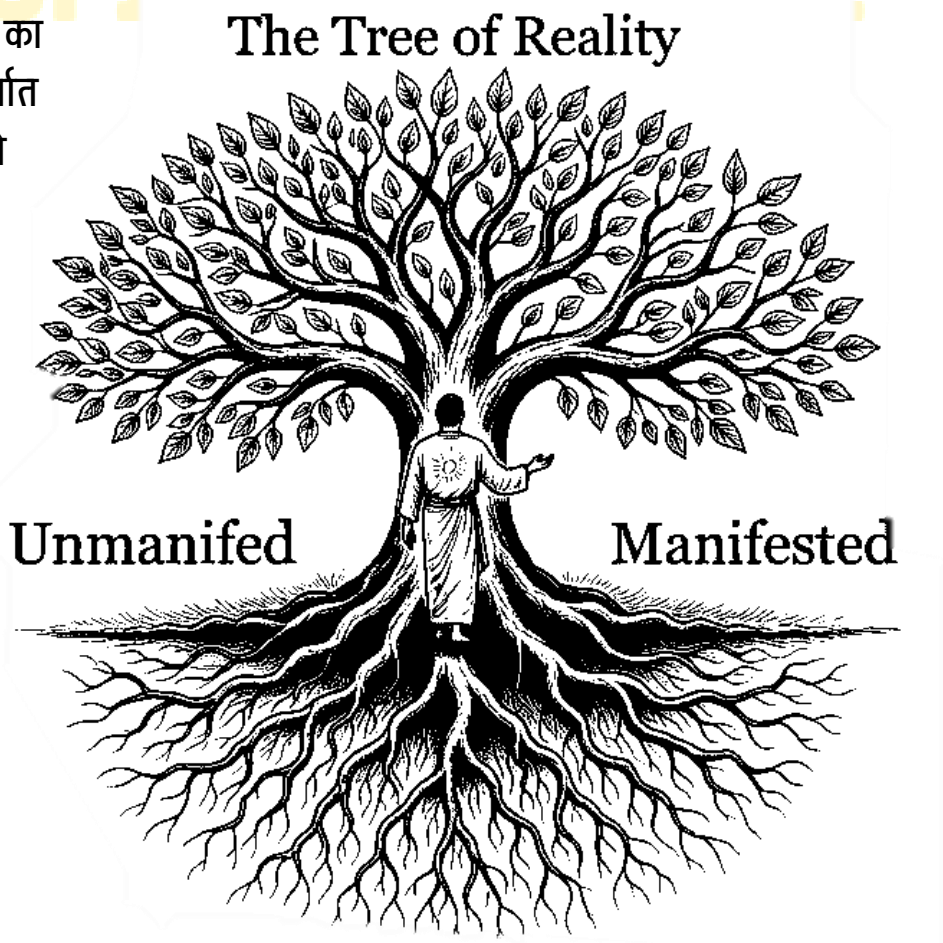

उपनिषद् कहता है कि यदि कोई व्यक्ति केवल अव्यक्त प्रकृति की ही उपासना करता है, अर्थात केवल किसी अदृश्य शक्ति या मूल प्रकृति के सिद्धान्त में ही उलझा रहता है और

सृष्टि के वास्तविक अनुभव और जीवन की प्रक्रिया को नहीं समझता, तो वह भी अज्ञान में रह सकता है।

उदाहरण

इसे ऐसे समझिए जैसे एक पेड़ को समझना। यदि कोई व्यक्ति केवल बीज को ही देखे और कहे कि यही सब कुछ है, तो वह पेड़ की पूरी वास्तविकता को नहीं समझ पाएगा। और यदि कोई व्यक्ति केवल पेड़ की शाखाओं और पत्तों को ही देखे लेकिन यह न समझे कि उनका स्रोत बीज और जड़ें हैं, तो उसकी समझ भी अधूरी होगी।

उपनिषद् का संकेत यही है कि वास्तविक ज्ञान तब आता है जब हम **मूल कारण और प्रकट रूप दोनों को समझते हैं**।

इस मन्त्र का गहरा संदेश यह है कि संसार को समझने के लिए मनुष्य को केवल दिखाई देने वाले पदार्थों या केवल अदृश्य सिद्धान्तों में ही सीमित नहीं रहना चाहिए। वास्तविक ज्ञान तब आता है जब हम सृष्टि के **मूल कारण और उसके प्रकट रूप दोनों के बीच के संबंध को समझते हैं**।

SPIRITUALCONCE

श्लोक-13

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३ ॥

अर्थ

कार्यब्रह्मकी उपासनासे और ही फल बताया गया है; तथा अव्यक्तोपासनासे और ही फल बताया है। ऐसा हमने बुद्धिमानोंसे सुना है, जिन्होंने हमारे प्रति उसकी व्याख्या की थी ॥ १३ ॥

व्याख्या

यह मन्त्र पिछले मन्त्र (१२) की ही आगे की व्याख्या करता है। वहाँ "सम्भूति" और "असम्भूति" का उल्लेख आया था, और यहाँ उपनिषद् स्पष्ट करता है कि इन दोनों से मिलने वाले परिणाम अलग-अलग होते हैं। ऋषि यह बताते हैं कि यह विचार उन्होंने स्वयं नहीं गढ़ा, बल्कि उन **धीर पुरुषों** से सुना है जिन्होंने वास्तविकता को गहराई से समझा था।

यहाँ **सम्भव (सम्भूति)** का अर्थ है प्रकट सृष्टि – वह संसार जो हमारे सामने दिखाई देता है, जैसे प्रकृति, जीव-जंतु, ग्रह, ऊर्जा और जीवन की गतिविधियाँ। दूसरी ओर **असम्भव (असम्भूति)** का अर्थ है वह अव्यक्त मूल कारण जिससे यह सृष्टि उत्पन्न हुई है, अर्थात वह आधार जो सीधे दिखाई नहीं देता।

उपनिषद् का कहना है कि इन दोनों की उपासना या समझ अलग-अलग परिणाम देती है। यदि कोई व्यक्ति केवल प्रकट संसार को ही समझने में लगा रहता है, तो वह प्रकृति के नियमों, विज्ञान और जीवन की व्यवस्था को समझ सकता है। लेकिन इससे उसे अस्तित्व के अंतिम कारण का ज्ञान नहीं मिलेगा।

इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति केवल उस अदृश्य मूल सिद्धान्त को ही समझने में लगा रहे और सृष्टि के प्रकट रूपों को न समझे, तो उसकी समझ भी अधूरी रह जाएगी।

उदाहरण

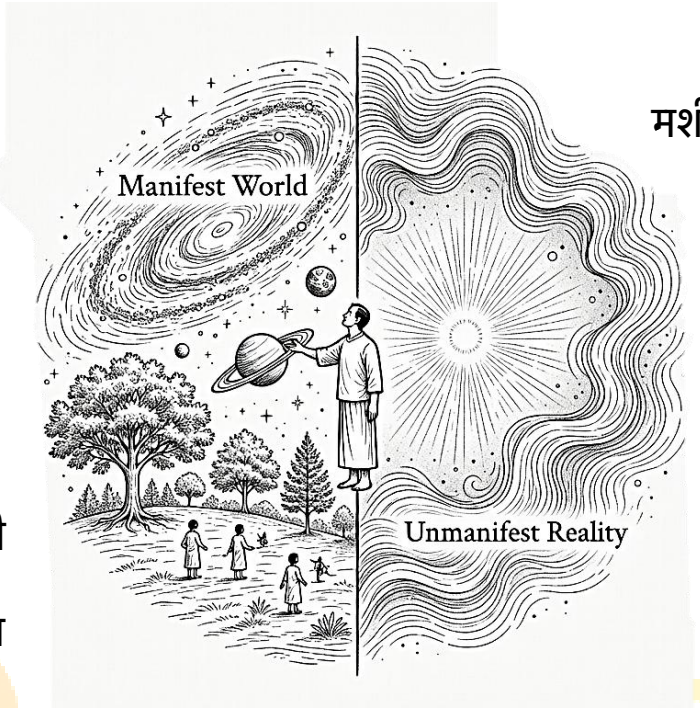

मान लीजिए एक मशीन है। यदि आप केवल मशीन के बाहरी हिस्से को देखें – उसके पहिए, बटन और संरचना – तो आप यह समझ सकते हैं कि वह कैसे काम करती है। लेकिन यदि आप यह नहीं समझते कि उसके भीतर कौन-सा सिद्धान्त या ऊर्जा काम कर रही है, तो आपकी समझ अधूरी रहेगी।

और यदि आप केवल उसके सिद्धान्तों के बारे में सोचते रहें लेकिन मशीन को वास्तविक रूप में कभी देखें ही नहीं, तो भी आपकी समझ अधूरी रहेगी।

उपनिषद् का संदेश यह है कि **वास्तविक ज्ञान तब आता है जब मनुष्य कारण और परिणाम दोनों को समझता है – मूल सिद्धान्त भी और प्रकट संसार भी**।

यही संतुलित दृष्टि मनुष्य को अस्तित्व की गहरी समझ की ओर ले जाती है।

श्लोक-14

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥ १४ ॥

अर्थ

जो असम्भूति और कार्यब्रह्म—इन दोनोंको साथ-साथ जानता है वह कार्यब्रह्मकी उपासनासे मृत्युको पार करके असम्भूतिके द्वारा [प्रकृतिलयस्वरूप] अमृतत्व प्राप्त कर लेता है ॥ १४ ॥

यह मन्त्र ईशावास्य उपनिषद् के उस गहरे सिद्धान्त को पूरा करता है जो पिछले कुछ मन्त्रों में लगातार समझाया जा रहा था। यहाँ ऋषि बताते हैं कि वास्तविक ज्ञान केवल किसी एक पक्ष को पकड़ने से नहीं मिलता। मनुष्य को **सम्भूति (प्रकट सृष्टि)** और **विनाश (नश्वरता या परिवर्तन)** दोनों की प्रकृति को समझना आवश्यक है।

यहाँ "विनाश" का अर्थ केवल नष्ट होना नहीं है, बल्कि यह उस सत्य की ओर संकेत करता है कि संसार की हर वस्तु परिवर्तनशील है। शरीर बदलता है, पदार्थ बदलता है, तारे बनते और नष्ट होते हैं, और पूरे ब्रह्मांड में निरंतर परिवर्तन चलता रहता है। इस परिवर्तनशीलता को समझना मनुष्य को यह सिखाता है कि भौतिक चीज़ें स्थायी नहीं हैं।

उदाहरण

एक बीज को देखिए। जब बीज मिट्टी में जाता है, तो वह अपने पुराने रूप में "नष्ट" हो जाता है। लेकिन उसी विनाश से एक नया पौधा जन्म लेता है। यदि बीज अपने पुराने रूप को पकड़े रहे, तो वह कभी पेड़ नहीं बन सकता।

उपनिषद् का संदेश भी यही है – जीवन में परिवर्तन और नश्वरता को समझना आवश्यक है, क्योंकि उसी समझ से मनुष्य उस गहरे सत्य तक पहुँच सकता है जो परिवर्तन से परे है।

इस मन्त्र का सार यह है कि जब मनुष्य संसार की नश्वरता और उसके मूल स्रोत दोनों को समझ लेता है, तब वह जीवन को अधिक व्यापक दृष्टि से देखने लगता है। यही समझ उसे भय और सीमाओं से ऊपर उठाकर उस चेतना की ओर ले जाती है जिसे उपनिषद् **अमृतत्व** कहते हैं।

SPIRITUALCONCE

श्लोक-15

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥ १५ ॥

अर्थ

आदित्यमण्डलरूप प्रकाशमय पात्रसे ढका हुआ है। हे पूषन्! मुझे सत्यधर्मको आत्माको उपलब्धि करानेके लिये तू उसे उद्घाटित दे ॥ १५ ॥

यहाँ ऋषि सूर्य से प्रार्थना करते हैं कि वह उस "सत्य" को ढकने वाले प्रकाश के आवरण को हटा दे ताकि साधक वास्तविक सत्य को देख सके।

SPIRITUALCONCE

पहली नज़र में यह अजीब लगता है कि प्रकाश सत्य को छिपा कैसे सकता है। सामान्यतः हम सोचते हैं कि प्रकाश सत्य को प्रकट करता है। लेकिन यहाँ "हिरण्मयेन पात्रेण" का अर्थ है एक **चमकदार आवरण** – ऐसा आकर्षक या उज्ज्वल रूप जो वास्तविकता को ढक देता है।

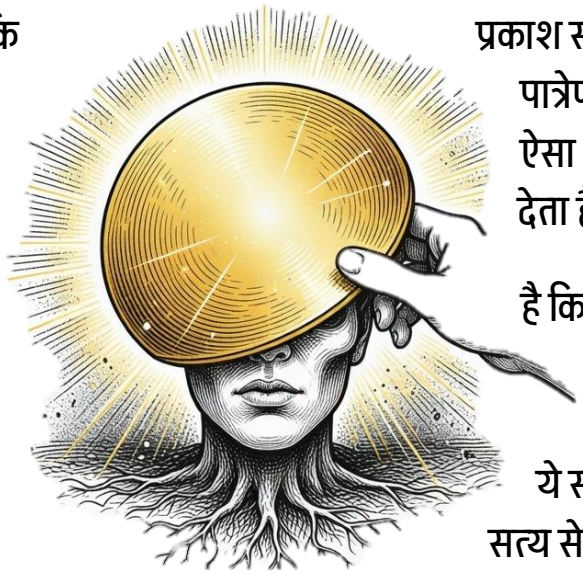

उपनिषद् का संकेत यह है कि संसार में बहुत सी चीज़ें बाहर से बहुत आकर्षक और चमकदार दिखाई देती हैं – धन, शक्ति, प्रसिद्धि, पद, बाहरी ज्ञान या भौतिक उपलब्धियाँ। ये सब उस सुनहरे आवरण की तरह हैं जो हमें वास्तविक सत्य से दूर कर सकते हैं यदि हम केवल इन्हीं में उलझ जाएँ।

ऋषि यहाँ सूर्य को **"पूषन्"** कहकर संबोधित करते हैं। पूषन् का अर्थ है पोषण करने वाला, मार्गदर्शक। सूर्य को ज्ञान और प्रकाश का प्रतीक माना गया है। इसलिए साधक सूर्य से प्रार्थना करता है कि वह उस बाहरी चमक को हटाकर उसे सत्य का दर्शन करा दे।

उदाहरण

मान लीजिए किसी व्यक्ति का जीवन सोशल मीडिया पर बहुत चमकदार दिखाई देता है – शानदार तस्वीरें, सफलता और प्रसिद्धि। बाहर से सब कुछ परिपूर्ण लगता है। लेकिन वास्तविक जीवन में वह व्यक्ति अंदर से परेशान या असंतुष्ट भी हो सकता है।

इसका अर्थ यह है कि बाहरी चमक हमेशा वास्तविक सत्य को नहीं दिखाती।

उपनिषद् का संदेश यह है कि मनुष्य को केवल बाहरी आकर्षणों और सतही ज्ञान से संतुष्ट नहीं होना चाहिए। उसे उस गहरे सत्य की खोज करनी चाहिए जो इन सबके पीछे छिपा हुआ है।

इस मन्त्र में साधक की प्रार्थना यही है –
"हे प्रकाश के स्रोत! उस चमकदार आवरण को हटा दे ताकि मैं वास्तविक सत्य का दर्शन कर सकूँ।"

SPIRITUALCONCE

यह एक प्रतीकात्मक प्रार्थना है कि मनुष्य की चेतना से अज्ञान, भ्रम और बाहरी आकर्षण का आवरण हट जाए और वह अस्तित्व के वास्तविक स्वरूप को देख सके।

श्लोक-16

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह ।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ १६ ॥

अर्थ

हे जगत्पोषक सूर्य! हे एकाकी गमन करनेवाले! हे यम (संसारका नियमन करनेवाले)! हे सूर्य (प्राण और रसका शोषण करनेवाले)! हे प्राजापत्यदेव! तू अपनी किरणोंको हटा दे (अपने तेजको समेट ले)। तेरा जो अति सुन्दर कल्याणमय रूप है उसे मैं देखता हूँ। यह जो आदित्यमण्डलस्थ पुरुष है वह मैं हूँ ॥ १६ ॥

यहाँ साधक सूर्य से प्रार्थना करता है कि वह अपनी तीव्र किरणों को हटा दे ताकि वह उसके भीतर स्थित उस परम सत्य को देख सके। लेकिन यह केवल खगोल या सूर्य की बात नहीं है; यह एक प्रतीकात्मक भाषा है जिसमें सूर्य को **ज्ञान, चेतना और ब्रह्मांडीय ऊर्जा** का प्रतीक माना गया है।

साधक सूर्य को कई नामों से संबोधित करता है – **पूषन्, एकर्षे, यम, सूर्य, प्राजापत्य**। ये सभी नाम सूर्य की अलग-अलग भूमिकाओं को दर्शाते हैं। सूर्य जीवन का पोषण करता है, समय और नियमों का आधार है, और पूरी पृथ्वी पर ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। इसलिए वेदों में सूर्य को केवल एक तारा नहीं बल्कि जीवन के आधार के रूप में देखा गया।

इस मन्त्र का सबसे गहरा भाग अंत में आता है –
“योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि”
अर्थात – “जो वह परम पुरुष है, वही मैं हूँ।”

यहाँ उपनिषद् का मुख्य सिद्धान्त प्रकट होता है – **आत्मा और ब्रह्म का एकत्व**। साधक कहता है कि जो चेतना पूरे ब्रह्मांड में है, वही चेतना मेरे भीतर भी है। यह कोई अहंकारपूर्ण कथन नहीं है, बल्कि यह अनुभव है कि व्यक्ति का वास्तविक स्वरूप उस सार्वभौमिक चेतना से अलग नहीं है।

उदाहरण

मान लीजिए समुद्र में हजारों लहरें हैं। हर लहर अलग दिखाई देती है, लेकिन वास्तव में वे सब समुद्र ही हैं। यदि कोई लहर समझ ले कि उसका वास्तविक स्वरूप समुद्र है, तो उसका भय और अलगाव समाप्त हो जाता है।

उपनिषद् का यह मन्त्र उसी अनुभूति को व्यक्त करता है। जब साधक अपने वास्तविक स्वरूप को समझता है, तो उसे अनुभव होता है कि उसकी चेतना उस सार्वभौमिक चेतना से अलग नहीं है।

इसलिए इस मन्त्र का सार केवल सूर्य की प्रार्थना नहीं है, बल्कि यह एक गहरी आध्यात्मिक अनुभूति है –
व्यक्ति और ब्रह्मांड के बीच के एकत्व की अनुभूति।

श्लोक-17

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् ।
ॐ क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर ॥ १७ ॥

अर्थ

अथ मेरा प्राण सर्वात्मक वायुरूप सूक्ष्मात्माको प्राप्त हो और यह शरीर भस्म हो जाय। हे मेरे संकल्पात्मक मन! अब तू स्मरण कर, अपने किये हुए कर्मोंका स्मरण कर, अब तू स्मरण कर, अपने किये हुए कर्मोंका स्मरण कर ॥ १७ ॥

मन्त्र का पहला भाग कहता है – **"वायुरनिलममृतम्"**। इसका अर्थ है कि प्राण या जीवन ऊर्जा अंततः उस सार्वभौमिक वायु या ऊर्जा में मिल जाती है जिससे वह उत्पन्न हुई थी। और **"भस्मान्तं शरीरम्"** का अर्थ है कि शरीर अंततः मिट्टी या राख में परिवर्तित हो जाता है। यह जीवन के उस प्राकृतिक नियम की ओर संकेत करता है कि शरीर नश्वर है और प्रकृति के चक्र में वापस लौट जाता है।

आधुनिक विज्ञान भी इसी सिद्धान्त को एक अलग भाषा में समझाता है। जब कोई जीव मरता है, तो उसका शरीर धीरे-धीरे प्रकृति के तत्वों में बदल जाता है। कार्बन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन जैसे तत्व फिर मिट्टी, हवा और अन्य जीवों के चक्र में प्रवेश कर जाते हैं। इस प्रकार शरीर प्रकृति के बड़े चक्र का हिस्सा बन जाता है।

लेकिन मन्त्र का दूसरा भाग और भी महत्वपूर्ण है –
"क्रतो स्मर कृतं स्मर"।

यहाँ "क्रतु" का अर्थ है संकल्प या मन। ऋषि अपने मन से कहते हैं – अपने कर्मों को याद करो। इसका संकेत यह है कि जीवन का वास्तविक मूल्य हमारे कर्म और हमारे द्वारा किए गए कार्यों में है।

उदाहरण

मान लीजिए किसी शिक्षक ने हजारों विद्यार्थियों को शिक्षा दी। एक दिन उसका शरीर नष्ट हो जाएगा, लेकिन उसके द्वारा दी गई शिक्षा उन विद्यार्थियों के जीवन में आगे भी काम करती रहेगी। वे विद्यार्थी फिर दूसरों को प्रभावित करेंगे।

इस तरह उस व्यक्ति के कर्मों का प्रभाव लंबे समय तक चलता रहता है।

उपनिषद् का संदेश यह है कि मनुष्य को यह समझना चाहिए कि शरीर अस्थायी है, लेकिन उसके विचार, कर्म और प्रभाव दुनिया में एक लम्बी श्रृंखला बनाते हैं। इसलिए जीवन का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि हम अपने कर्मों को किस दिशा में उपयोग करते हैं।

यह मन्त्र हमें मृत्यु से डराने के लिए नहीं है, बल्कि यह याद दिलाने के लिए है कि **जीवन सीमित है, इसलिए उसे जागरूकता और जिम्मेदारी के साथ जीना चाहिए।**

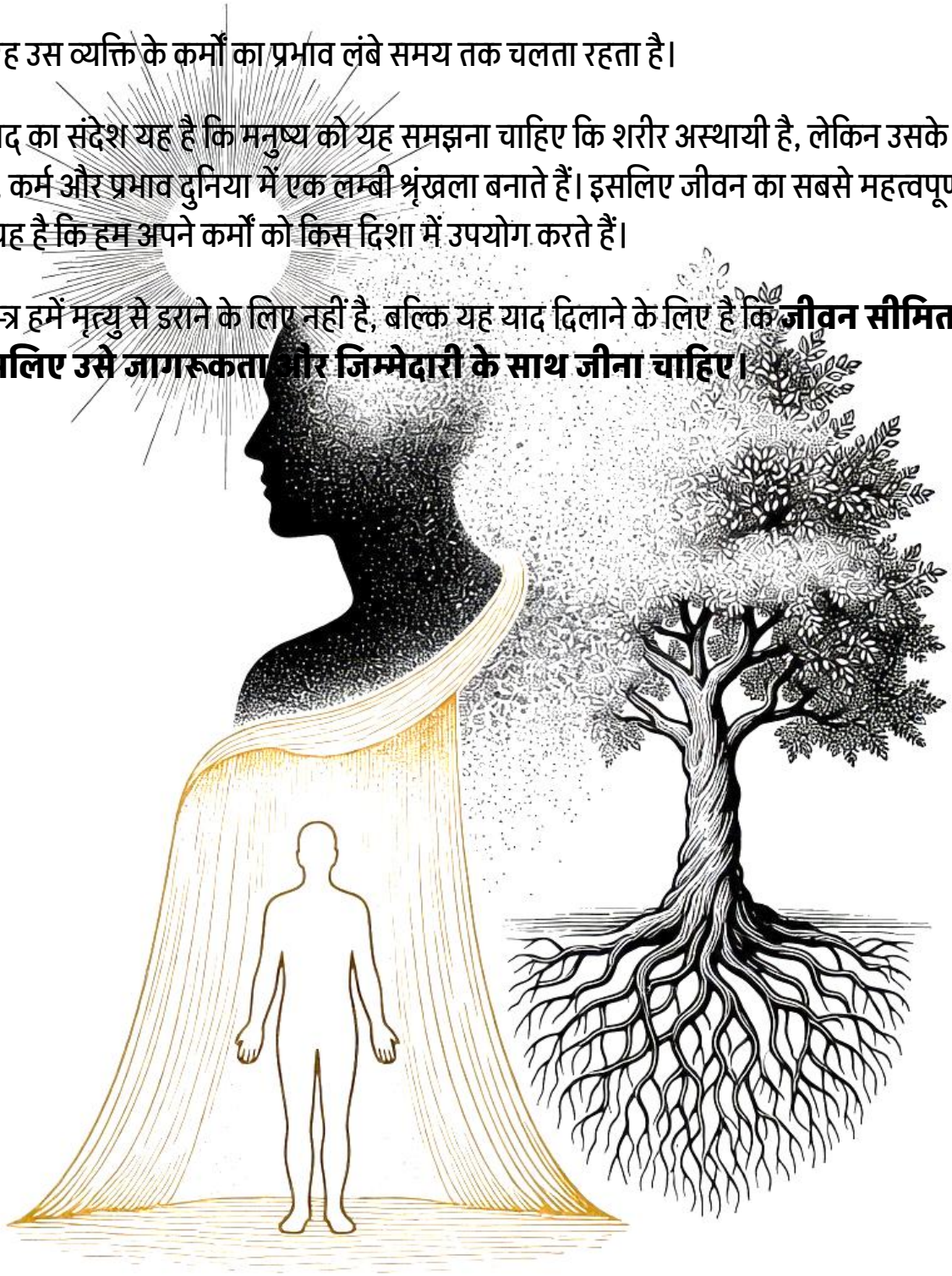

श्लोक-18

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥ १८ ॥

अर्थ

हे अग्ने ! हमें कर्मफलभोगके लिये सन्मार्गसे ले चल । हे देव ! तू समस्त ज्ञान और कर्मोंको जाननेवाला है । हमारे पापरूप दोषोंको दूर कर । हम तेरे लिये अनेक नमस्कार करते हैं ॥ १८ ॥

व्याख्या

यह मन्त्र ईशावास्य उपनिषद् का अंतिम मन्त्र है और इसमें एक गहरी प्रार्थना और जीवन-दर्शन छिपा हुआ है। यहाँ साधक अग्नि से प्रार्थना करता है कि वह उसे सही मार्ग पर ले जाए। वेदों में अग्नि केवल भौतिक आग नहीं है, बल्कि वह **ज्ञान, चेतना, ऊर्जा और मार्गदर्शन** का प्रतीक है।

मन्त्र का पहला भाग है – **"अग्ने नय सुपथा"**। इसका अर्थ है कि हमें अच्छे मार्ग पर ले चलो। यहाँ "सुपथा" का अर्थ केवल नैतिक मार्ग नहीं है, बल्कि ऐसा जीवन-पथ है जो मनुष्य को भ्रम, अज्ञान और गलत निर्णयों से दूर रखे। मनुष्य का जीवन अनेक विकल्पों और परिस्थितियों से भरा होता है, इसलिए सही दिशा चुनना हमेशा आसान नहीं होता।

इसीलिए साधक उस चेतना या ज्ञान के स्रोत से प्रार्थना करता है जो सही और गलत के बीच अंतर समझने की क्षमता देता है।

उदाहरण

यदि हम आधुनिक तकनीक का उदाहरण लें तो GPS सिस्टम को देख सकते हैं। जब हम किसी अनजान जगह जाते हैं, तो GPS हमें सही रास्ता दिखाता है। वह हमारे स्थान को पहचानता है और फिर हमें सबसे उपयुक्त मार्ग बताता है।

लेकिन यदि GPS न हो, तो हम आसानी से गलत दिशा में जा सकते हैं।

उपनिषद् का यह मन्त्र उसी प्रकार की आंतरिक मार्गदर्शक शक्ति की बात करता है – वह विवेक या चेतना जो हमें सही निर्णय लेने में मदद करती है।

मन्त्र का दूसरा भाग कहता है – **"वयुनानि विद्वान्"**, अर्थात् तू सभी कर्मों और उनके परिणामों को जानता है। इसका संकेत यह है कि प्रकृति और जीवन के नियम बहुत सूक्ष्म हैं। हर कर्म का एक परिणाम होता है, और ये परिणाम एक बड़े कारण-परिणाम के तंत्र का हिस्सा हैं।

मान लीजिए कोई व्यक्ति अपने स्वास्थ्य की परवाह नहीं करता – गलत भोजन करता है, व्यायाम नहीं करता और लगातार तनाव में रहता है। कुछ समय बाद उसके शरीर पर इसका प्रभाव दिखाई देने लगता है। यह कर्म और परिणाम का एक सरल उदाहरण है।

इसी प्रकार जीवन के हर निर्णय का प्रभाव पड़ता है – हमारे ऊपर भी और समाज पर भी।

मन्त्र का अंतिम भाग है – **"युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः"**। इसका अर्थ है कि हमारे भीतर जो दोष, गलतियाँ या अज्ञान है, उसे दूर कर दो। यह एक आत्मिक स्वीकार है कि मनुष्य पूर्ण नहीं है और उसे लगातार सीखने और सुधारने की आवश्यकता होती है।

इस मन्त्र का सार यह है कि मनुष्य को अपने जीवन में सही दिशा, विवेक और जागरूकता की आवश्यकता होती है। जब वह अपने भीतर के ज्ञान और सत्य की ओर बढ़ता है, तब उसका जीवन अधिक संतुलित और अर्थपूर्ण हो जाता है।

इस प्रकार ईशावास्य उपनिषद् का अंतिम मन्त्र हमें यह सिखाता है कि **जीवन केवल ज्ञान प्राप्त करने के बारे में नहीं है, बल्कि उस ज्ञान के आधार पर सही मार्ग पर चलने के बारे में भी है।**

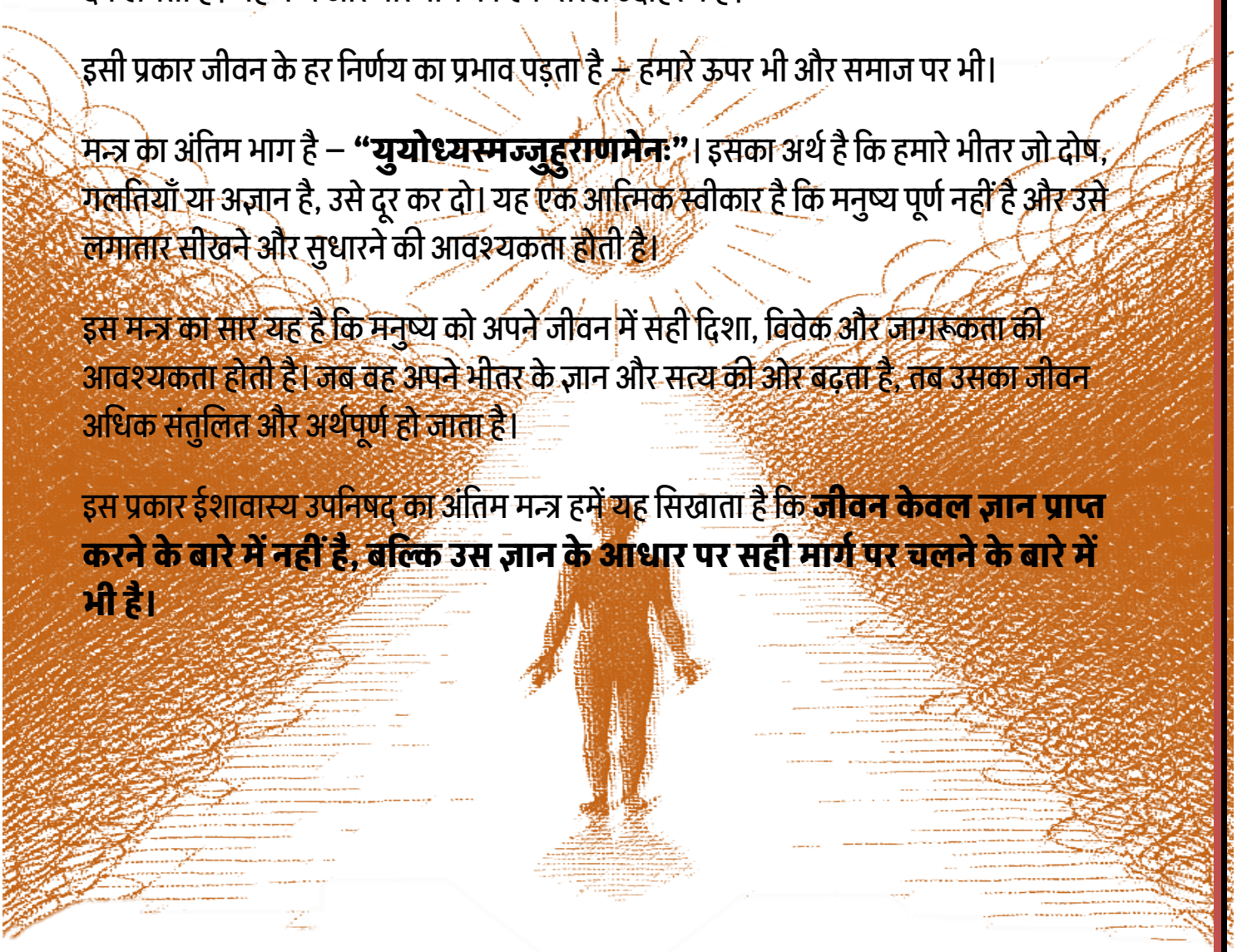

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

SPIRITUALCONCE